RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-02
February-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

एका आंदोलन : किसान विद्रोह के संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन

अनिल कुमार

शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 20 February 2019

Keywords
किसान विद्रोह एका आंदोलन

***Corresponding Author**
Email: anilsinghuoa[at]gmail.com

ABSTRACT

सदियों से सांगठनिक तौर पर गरीब किसानों में एकता का अभाव रहा है। संख्याबल में बहुतायत होते हुए भी अपने शोषण, उत्पीड़न और बदहाली के विरुद्ध उनकी एकता और संघर्ष इतिहास के बहुत कम कालखण्ड में दिखाई और सुनाई देते हैं। हर बार एकता और संघर्ष की शुरुआत को अभिजातवर्गीय समुदाय और शासन द्वारा नेस्तनाबूत कर दिया जाता रहा है। यह स्थिति आदि से आज तक बनी हुयी है। बावजूद इसके प्रस्तुत शोध प्रस्ताव का अध्ययन इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि इससे यह जानने में सहायता मिल सकेगी कि अन्नदाता के प्रति कुलीनतावादी समाज का रवैया इतिहास को अन्यायपरक बनाने में कितना सुसंगठित और ताकतवर रहा है तथा संविधान की न्यायपरकता अगर अब भी अभासी है तो इसका मूल कारण क्या है और स्वतंत्रोपरान्त इतने अर्से के शासन के बावजूद कृषक समस्याओं का वास्तविक समाधान क्यों नही हो सका?

प्रस्तुत शोध प्रस्ताव 'एका आंदोलन : किसान विद्रोह के संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन' में कई ऐसे तथ्यों का अध्ययन किया जाएगा जो कृषकों के प्रति छद्म को समझने तथा हाशिए के समाज के मुक्ति एवं संघर्ष की नई दिशा तलाशने में हमारी मदद करेंगे। किसानों के क्रांतिकारी तेवर को दबाने और कुलीनतावादियों को लाभ पहुंचाने का कार्य तब भी किया जाता था और आजादी के इतने सालों बाद आज भी यह नीति जारी है, मगर यह आजादी वास्तव में किसके लिए लड़ी गई थी, इस प्रश्न का उत्तर एका आंदोलन जैसे जन आंदोलनों में ही तलाशा जा सकता है।

भारत में अंग्रेजी सत्ता की स्थापना के साथ ही उसका प्रतिरोध भी आरम्भ हो गया था। कम्पनी सरकार की राजनीतिक तथा आर्थिक नीतियों के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण समाज के सभी वर्गों में शीघ्र ही इस अंग्रेजी सत्ता के प्रति असंतोष फैला गया और भारत के भिन्न–भिन्न भागों में प्रतिरोध तथा विद्रोह प्रस्फुटित होने प्रारम्भ हो गए।

गौरतलब है कि भारत की अधिकांश जनसंख्या कृषि क्षेत्र से जुड़ी थी और कम्पनी सरकार की मुख्य नीति अपने आर्थिक हितों की पूर्ति तथा औपनिवेशिक दोहन था। अतः ब्रिटिश साम्राज्य के शोषणकारी औपनिवेशिक चरित्र का सर्वाधिक प्रभाव कृषक समुदाय पर ही पड़ा, यथा–लगान में निरंतर वृद्धि, अत्याचार पूर्ण वसूली, जोत से बेदखली, बेगारी, नजराना, कृषि का वाणिज्यीकरण, बढ़ती ऋणग्रस्तता तथा निरंतर पड़ने वाले अकालों ने कृषकों की कमर तोड़ दी, जिससे कि अनेक क्षेत्रों में कृषक विद्रोह होने प्रारम्भ हो गए, उदाहरणस्वरूप–सन्यासी, फकीर, रंगपुर, बिशनपुर, पागलपंथी, हाथीखेड़ा, रामोसी, मोपला, फरायजी, नील, पावना, फड़के, बिजौलिया तथा तानाभगत, किसान आंदोलन आदि।[1] किंतु सरकार ने इन विद्रोहों को सैन्य शक्ति का सहयोग लेकर दबा दिया और कृषकों की दयनीय स्थिति को सुधारने का कोई संतोषजनक प्रयास नही किया।

ऐसे ही समय में जब प्रथम विश्वयुद्ध के आर्थिक दुष्परिणामो, बढ़ती महंगाई, लगान की वृद्धि, नवीन बीमारियों, जमीदारी शोषण तथा अन्याय पूर्ण ब्रिटिश नीतियों ने कृषकों की स्थिति को असह्य बना दिया तो पुनः कृषक आंदोलनो का दौर प्रारम्भ हुआ।

इस दिशा में प्रारम्भ में चम्पारन तथा खेड़ा में शांतिपूर्ण और सफल कृषक आन्दोलन हुए किंतु 1920 के बाद जब रौलट एक्ट, जलियावालाबाग हत्याकाण्ड तथा 1919 के अधिनियम और प्रथम विश्वयुद्ध बाद उत्पन्न मुस्लिम असंतोष के परिणामस्वरूप प्रारम्भ असहयोग आंदोलन तथा खिलाफत आंदोलन चरम पर था तो अवध मे भी किसानो ने विद्रोह प्रारम्भ कर दिए और जल्द ही यह आंदोलन प्रतापगढ़, रायबरेली, सुल्तानपुर, फैजाबाद तथा गोंडा तक फैल गया और कई जगह इसने हिंसात्मक घटनाओं को भी अंजाम दिया। किंतु शीघ्र ही जमीदारों तथा सरकार के दमन और कांग्रेस के निरंतर प्रयासों से 1921 के मध्य तक यह आंदोलन शांत पड़ गया।

माजिद सिद्दीकी के अनुसार 1921 के अंत में अवध के किसान आंदोलन मे एक बार पुनः उभार आया। जैसे 'यह अपनी राख से ही चिनगारी बनकर' सामने आया हो। अब हरदोई, बाराबंकी, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, शहजहांपुर, बहराइच तथा लखनऊ आदि इसके केंद्र बने। अपने नए रूप में यह आंदोलन 'एका आंदोलन' कहलाया जिसका नेतृत्व मदारी पासी नामक एक क्रांतिकारी किसान नेता ने किया।[2]

एका आंदोलन की परिस्थितियाँ :–

RRIJM 2015, All Rights Reserved

एका आंदोलन से महज कुछ ही साल पहले 1917 ई0 में अवध प्रांत के उत्तर में हजारों मील दूर रूस में कृषको और मजदूरों द्वारा लेनिन के नेतृत्व में राजतंत्र का अंत कर समाजवादी शासन की स्थापना ने समस्त विश्व के सर्वहारा वर्ग में चेतना एवं उत्साह का नवीन संचार किया।इधर भारत में गांधी के नेतृत्व में चम्पारन, अहमदाबाद और खेड़ा के कृषक–मजदूर आंदोलनो को मिली सफलता ने भी भारत के कृषकों में अपने हितों को लेकर जागरूकता, चेतना तथा शाक्ति का नवीन संचार किया। परिणामस्वरूप राजपूताना, दरभंगा, पं0बंगाल, आंध्र प्रदेश आदि जगहों पर भी कृषक आंदोलन प्रारम्भ हो गए। किंतु अवध और पश्चिमी उत्तर प्रदेश अभी भी चुप था, किंतु यहां भी कृषक असंतोष की आग अंदर–ही–अंदर सुलग रही थी, जिसके पीछे अनेक कारण उत्तरदायी थे।

1856 मे ही अवध के ब्रिटिश साम्राज्य में विलय के पश्चात ब्रिटिश राज की छत्र–छाया मे सामंतवर्ग के शोषण और उत्पीड़न का शिकार किसान पहले से ही होते आ रहे थे, ऐसी ही दशा में विश्वयुद्ध की ज्यादतियों, युद्ध खत्म होने के पश्चात आकाशछूती कीमतों, कई बीमारियों आदि के उत्पन्न हो जाने से उत्तर प्रदेश के खेतिहर समुदाय की स्थिति अत्यंत दयनीय होती जा रही थी। लगान की निरंतर वृद्धि तथा तालाब एवं चारागाहों पर वसूले जा रहे जबरन करों तथा वसूली के अत्याचार पूर्ण तरीकों ने कृषकों की स्थिति को और भी बद–से–बदतर बना दिया था।

प्रथम विश्वयुद्ध की लड़ाई के दौरान 'भर्ती चन्दा' और लड़ाई की समाप्ति के बाद 'लड़ाई चंदा' ने बेदखली से परेशान किसानों को कमर तोड़ दी। ऐसी भर्तियों से सैन्य खर्च में 300 प्रतिशत की वृद्धि हुई। जिसकी पूर्ति हेतु तमाम सारे कर लगाए गए एवं करो में वृद्धि की गई। भूमि कर भी इनमें से एक प्रमुख भाग था।[3] 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में 7 अकाल में 15 लाख व्यक्ति तथा 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में 24 अकाल पड़े जिनमें 2.85 लाख व्यक्ति मारे गए। ठीक इसी प्रकार 20वीं सदी के प्रारम्भ में 25 वर्षों में पड़े अकालों में विलायत की जनसंख्या के लगभग आधी आबादी भारत में साफ हो गयी।[4]

'गार्डन आफ इण्डिया' मे इरविन ने बताया है कि जोतों से बेदखली भी कृषक असंतोष का प्रधान कारण थी क्योंकि यहां महज 4.5 प्रतिशत कृषकों को ही जोत पर दखल का अधिकार था, बाकी 95.5 प्रतिशत को तालुकेदार जब चाहे जोत से बेदखल कर सकते थे। किसानों को बेदखल करने के बहाने भूस्वामी तीन निशाने साधते थे, प्रथम अवैध वसूली, दूसरा हिसाब–किताब ठीक कर लेना और तीसरा किसानों को एक निश्चित खेत पर खेती करते रहने से वंचित कर देना।[5] बेगारी की समस्या भी चरम पर थी, जिसमे जामीदार–तालुकेदार खेतिहर वर्ग से घी, उपली, लकड़ी या श्रम अपने मानमाफिक रूपये देकर जबरिया करवाते थे। कर्जों में डूबी निम्न जातियां कर्ज की एवज में आजीवन बंधुआ मजदूर के रूप में जीवन बिताती थीं।[6] ऐसी स्थिति मे जब न तो इन पर जमीदार या सरकार ध्यान दे रही थी और न ही कोई राष्ट्रीय राजनेता, तो कृषकों द्वारा असंतोष के प्रति स्वयं ही प्रतिक्रिया करना स्वाभाविक था।

इन तमान कारणों के साथ–साथ एक अन्य महत्व की बात यह भी है कि चम्पारण की जांच से लेकर अवध के किसान आंदोलन तक, इन पांच सालों मे कृषक समस्याओं पर अनेक लेख, पत्र–पत्रिकाएं, पुस्तकें तथा साहित्य विवेचनात्मक दृष्टि से लिखा जा रहा था जिससे किसनो का सवाल राजनीतिक दृष्टि से जागरूक मध्यम वर्ग के बीच सैद्धांतिक और व्यवहारिक राजनीति का बिषय बन चुका था और खुद किसान एक स्वतंत्र ताकत के रूप में उठ खड़े हो रहे थे।

इस प्रकार अवध में व्याप्त इन तमान काश्तकारी समस्याओं के विरूद्ध 1918 ईं में मदन मोहन मालवीय के प्रयास से गौरीशंकर मिश्र और इंद्र नारायण द्विवेदी ने 'उत्तर प्रदेश किसान सभा' की स्थापना की और इसी के माध्यम से उन्होने एक शांतिपूर्ण किसान आंदोलन शुरू किया किंतु कलांतर मे जब इसे बाबा रामचन्द्र का सक्षम नेतृत्व मिल गया तो शीघ्र ही यह आंदोलन तीव्र गति से आगे बढ़कर रायबरेली, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, फैजाबाद तथा गोण्डा आदि जिलों तक फैल गया। अतः बाध्य होकर सरकार ने ''अवध रेन्ट एक्ट–1886'' में संशोधन करना स्वीकार कर लिया किंतु जब अवध आंदोलन धीमा पड़ गया तो पहले सरकार ने एक्ट पास करने मे देरी की, दूसरे एक्ट पर हो रही चर्चा मे किसानो को शामिल न करके जमीदारों को ही शामिल किया गया।[7] इस प्रकार एक्ट में संशोधन के बावजूद भी बेगारी, बेदखली, लगान वृद्धि सम्बन्धी समस्याओं का समाधान न हो सका और अब कृषकों का असंतोष और भी चरम पर पहुंच गया। नेहरू ने अपनी किताब 'An Autobiography' में भी कहा है, ''अवध रेन्ट एक्ट–1921 द्वारा कहने को तो आजीवन स्वामित्व दिया गया किंतु इससे वास्तव में किसानो को कोई लाभ न हुआ।''[8]

ऐसे ही समय में जब दक्षिणी अवध प्रांत का उग्र किसान आंदोलन, सरकार और जमीदारों के क्रूर दमन के कारण 1921 के मध्य में दबा दिया गया था, ठीक उसी समय एक नया उग्र किसान आंदोलन हरदोई जिले के उत्तरी और अवध के पश्चिमी जिलों मे प्रारम्भ किया गया। यह आन्दोलन ही 'एका आंदोलन' कहलाया और इसके प्रमुख नेता मदारी पासी थे।

एका आंदोलन एंव उसका स्वरूप :–

एका आंदोलन की क्रांतिकारी शुरूआत 28 दिसम्बर 1921 को मलेहरा गांव से हुई। गांव के जिलेदार के घर को किसानों ने घेर लिय। यह घेराव अवैध कर वसूली, बढ़ती महंगाई तथा उत्पाद व राजस्व का नगद में रूपांतरण आदि को लेकर था। घेराव में 500 के आसपास किसानो ने भाग

लिया था। इस घेराव को तो स्टेट की सेना ने कुचल दिया किंतु इसकी प्रतिक्रियास्वरूप फूटे कृषक विद्रोह का विस्तार क्षेत्र न केवल हरदोई तक बल्कि सीतापुर, खीरी, शाहजहांपुर, बाराबंकी, बहराइच और लखनऊ जिलों तक फैल गया तथा आंदोलन का प्रभाव निरंतर बढ़ता गया।

ब्रिटिश अखबार 'द ग्लासगो हेराल्ड' मार्च 10, 1922 तथा 'द डेलीमेल' मार्च 10, 1922 ने 'एका का विकास' नाम से समाचार छापा कि "हरदोई का एका आंदोलन निसंदेह खतरनाक है। इसने अपील की कि नवीनता, अशिक्षित जनता की कल्पना है। मदारी पासी उसके नेताओं में से एक है जो 4 आना प्रति टिकट की दर से टिकट बेच रहा है, जिससे कि स्वराज मिलने पर वह धारक को भूमि का अधिकार प्रदान करेगा। इस आंदोलन को कुछ ब्राह्मणों द्वारा धार्मिक स्वरूप भी प्रदान करने का प्रयास किया गया हैं, असामियों की बड़ी–बड़ी सभाएं आयोजित की जा रही हैं तथा गंगाजल लेकर एकता कायम रखने का संकल्प लिया जा रहा है। कुछ गांवो मं एका वालों ने पंचायतो का गठन कर लिया है। एक स्थान पर तो कमिश्नर, डिप्टी कमिश्नर, पुलिस अधीक्षक तथा शहर कोतवाल का भी गठन कर लिया गया है। असहयोग आंदोलनकारियों तथा जमीदारो के द्वारा भी व्यापक चिन्ता प्रकट की जा रही है। इस प्रकार यह आंदोलन निश्चय ही क्रांति और अराजकता की ओर बढ़ रहा है और यदि जिले के 1000 हथियार इनके कब्जे में आ गए तो परिणाम बहुत गम्भीर हो सकते हैं।"[9]

एका आंदोलन की बड़ी–बड़ी सभाएं की जाने लगी। उन्होने पंचायतों तथा अन्य प्रशासनिक उपक्रमों का भी गठन कर लिया। असहयोग आंदोलन की तर्ज पर 4 आने की सदस्यता भी दिलाई गई। जमींदारों द्वारा दायर किए गए बेदखली के मुकदमों को लड़ने के लिए एक सुरक्षित कोष भी तैयार किया गया। साथ ही साथ एका आंदोलनकारियों ने जमींदारों के न्याय रहित मार्गों के विरुद्ध संगठित होने, आपसी मुकदमेबाजी से बाज आने, अपराध न करने, उचित लगान ही अदा करने, बेदखली पर जमीन न छोड़ने, बेगार करने से इंकार करने, पंचायत के निर्णय स्वीकार करने तथा एका कायम रखने की प्रतिज्ञा गंगाजल हाथ में देकर दिलाई।[10]

किसानो को संगठित करने के पुराने तौर तरीके ही अपनाए गए जिसकी जड़े खेतिहर आदिवासी कबीलों में मिलती हैं, यथा– मेले या बाजार में प्रचार करना, रात में सभाएं करना, शपथ लेना तथा बुलाने के लिए सांकेतिक आवाजों का प्रयोग करना जिससे देखते–ही–देखते हजारों किसान एक जगह इकट्ठा हो जाते थे। किसान सभाओं में किसानों को गोलबंद करने के लिए सत्यनारायण, महमूद शरीफ कथा, गीता, कुरान तथा अन्य धार्मिक कथाएं सुनाई जाती थी और फिर किसानो की समस्याओं पर चर्चा की जाती थी। इसमे अहीर, गड़ेरिया, तेली, तमोली, चमार, पासी, मुराऊ, आरख तथा गद्दी आदि जातियाँ शरीख थी। किसानों के झुण्ड हाथों में भाला, तलवार और कभी–कभी बन्दूक लेकर चलते थे।

इस प्रकार एका आंदोलन का स्वरूप आंदोलन के लिहाज से अत्यंत योजनाबद्ध तथा सुव्यवस्थित था और कृषक संगठन के लिहाज से अत्यंत विकसित और प्रौढ़ था।

एका आंदोलन के प्रति कांग्रेस तथा अभिजन वर्गों का दृष्टिकोणः–

एका आंदोलन के दौरान जमींदारों और कृषकों के साथ सम्बन्धों में कांग्रेस का दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा। इन्होने किसानो को संयमित करने का काम किया तथा इनकी नीति यह रही कि जमींदारों के विरुद्ध एक भी शब्द न कहकर उन्हे नाराज न किया जाए। कांग्रेस के राष्ट्रवादी नेताओं ने इस कृषक आंदोलन को असहयोग आंदोलन से तो मिलाने का प्रयास किया किंतु वे स्वयं एका आंदोलनकारियों की तरफ से संघर्ष में भागीदार न बने। जब एका आंदोलन क्रांतिकारी रुख अख्तियार कर अपने चरम पर पहुंच रहा था तो सर्वप्रथम भू–स्वामियों की हिफाजत के लिए शहरी कांग्रेसी भी सक्रिय होते दिखे। 14 फरवरी 1922 को किशनलाल नेहरु ने अतरौली जाकर गांधीवादी तरीके से किसानों और जमींदारों में एका स्थापित करवाने का प्रयास किया किंतु एका आंदोलनकारियों ने कांग्रेस की राय मानने से इंकार कर दिया क्योंकि वे यह जानते थे कि इनके सम्बंध जमींदारों से हैं। इस बात की पुष्टि तब हो गई जब रघुवीर कलवार ने गिरफ्तारी के बाद जेल में भूख हड़ताल प्रारम्भ की तो वहां पर बंद किसी भी असहयोग आंदोलनकारी ने उसका सहयोग नही किया। साथ ही जब जेल में आंदोलनकारियों की काम रोक देने तथा उपद्रव करने के दण्डस्वरूप भीषण पिटाई की गई तो उसमें भी किसी कांग्रेसी कैदी को सजा नही मिली।

कैम्ब्रिज इतिहासकार अनिल शील, फ्रांसिस राबिन्सन, डेविड वासब्रुक आदि कहते हैं कि औपनिवेशिक शासन के अन्तर्गत मूलभूत विरोध साम्राज्यवाद और भारतीय लोगों के बीच था ही नही बल्कि यह विरोध स्वयं भारतीय के बीच ही था। अतः भारतीय राष्ट्रवाद भी भारतीयों के औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध संघर्ष या किसी सामाजिक हित एवं राजनीतिक चेतना का प्रतिफल नही था अपितु ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रदत्त लाभों को प्राप्त करने के लिए भारतीयों के बीच ही था। अतः यह दृष्टिकोण कृषक आंदोलनों को भी सिर्फ भारतीय तालुकेदारों और जमींदारों के शोषण के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरुप ही देखता है जिसमें कांग्रेस की भूमिका संदेहास्पद और स्वार्थपूर्ण ही थी। इनका मानना है कि कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन साम्राज्यवाद के विरुद्ध भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व नही करता था बल्कि यह अभिजन वर्ग के हितों का ही प्रतिनिधित्व करता था तथा इसके नेता किसी महान विचारों से प्रेरित नही थे अपितु उसके पश्चात मिलने वाले लाभों और शक्ति से प्रेरित थे।

किसानो के प्रति कांग्रेस की इस नीति को मार्क्सवादियों ने औपनिवेशिक स्वामियों तथा अधीन लोगों के हितों के बीच वर्ग संघर्ष और विरोध के संदर्भ में देखा है। माजिद सिद्दीकी कहते हैं कि कांग्रेस बुर्जुवा वर्ग की हितैषी संस्था थी जिसने जमींदारों के हित में औपनिवेशिक सत्ता के साथ संयोजन कर सर्वहारा वर्ग द्वारा प्रारम्भ किए गए आंदोलनों से समय–समय पर सहयोग और समर्थन वापस लेकर तथा अहिंसा का छद्म करके कृषक आंदोलनों को कमजोर करने का काम किया। रजनी पाम दत्त कहते हैं कि कृषक आंदोलनों के प्रति कांग्रेस ने उदासीन नीति इसलिए अपनाई ताकि राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व किसी भी दशा में सर्वहारा वर्ग के हाथों में न जा सकें और इस पर अभिजन हितैषी कांग्रेस का ही प्रभुत्व निरंतर बना रहे।

उपाश्रयी धारा के इतिहासकार रणजीत गुहा, ज्ञानेंद्र पाण्डेय, साहिद अमीन, अयोध्या सिंह तथा कपिल कुमार आदि कैम्ब्रिज इतिहास लेखन तथा मार्क्सवादी इतिहास लेखन दोनों की व्याख्या को न्यायसंगत नही मानते हैं क्योंकि ये दोनों व्याख्याएं जमीनी जन आंदोलनों को देखने का प्रयास नही करती हैं। इनका मानना है कि औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज में अभिजात्य वर्ग और जनता में एकता कायम नही हुई बल्कि आंदोलन की दो स्पष्ट धाराएं थी– निचले तबके की जनता का साम्राज्यवाद विरोधी वास्तविक संग्राम तथा कांग्रेस की अगुवाई में अभिजन वर्ग का नकली स्वाधीनता संग्राम। इसी के आधार पर ज्ञानेंद्र पाण्डेय ने एका आंदोलन को वास्तविक स्वतंत्रता संग्राम की श्रेणी में रखते हुए कहा कि एका आन्दोलन का जहां एक तरफ स्वतंत्र अस्तित्व आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी चरित्र तथा संगठनात्मक स्वरुप था वहीं दूसरी तरफ इनके पास स्वतंत्र राजनीतिक चेतना, सुव्यवस्थित और योजनाबद्ध कार्यक्रम भी था। कपिल कुमार कहते हैं कि यह विद्रोह महज जमींदारों और तालुकेदारों के विरोध तक ही सीमित नही था बल्कि औपनिवेशिक प्रतीकों का विरोध, प्रशासनिक भवनों का घिराव, लूट, हड़ताल तथा अधिकारियों को बंदी बनाने तथा उन्हें सेवा देने से मनाही आदि से इसके उपनिवेशवाद विरोधी वास्तविक राष्ट्रीय चरित्र का भी पता चलता है।

जहाँ तक एका आंदोलन के प्रति अभिजन वर्गों के दृष्टिकोण का प्रश्न है तो सुभाष चंद्र कुशवाहा कहते हैं कि न केवल कांग्रेस ने एका आंदोलन के प्रति उदासीन भूमिका का निर्वहन किया बल्कि 'हरदोई कांस्टीच्यूसनल' जो जमींदारों, वकीलों तथा अन्य मध्यम वर्ग से मिलकर बनी थी, ने 22 फरवरी 1922 को एका आंदोलन की उत्पत्ति को बुरे आचरण वाले तथा गैरजिम्मेदार लोगों का कृत्य बताया। 25 फरवरी 1922 को जमींदारों ने इकट्ठा होकर एका वालों से सुरक्षा की मांग की तथा एका आंदोलन को दबाने की मांग को लेकर ठाकुर जमींदार मसाल सिंह ने लेजिस्लेटिव असेम्बली में गृहमंत्री पर भी दबाव बनाया।

एका आंदोलन मे सूदखोर महाजनो के चरित्र का कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिलता है। एका सभाओं की प्रतिज्ञाओं में बेदखली, बेगार, नजराना, लगान वृद्धि, सामंतीहिंसा तथा आपसी फूट के खिलाफ तो प्रतिज्ञाएं की गई किंतु महाजनो के शोषण के खिलाफ एक भी शब्द नहीं मिलता है। आंदोलन के दौरान सर्वाधिक हमले जमीदारों और तालुकदारों के कोठियों तथा बंगलों पर हुए। इसके बाद कारिंदों, चपराशियों, पुलिस और कुछ दुकानदारों पर हुए किंतु सूदखोर महाजनो पर हमले का उदाहरण अपवाद स्वरूप ही मिल सकता है।

एका आंदोलन की असफलता और सफलता :–

1922 के मध्य तक आते–आते जब एका आंदोलन का क्रांतिकारी स्वरुप बढ़ता जा रहा था और इससे सुरक्षा के लिए जमींदार और मध्यम वर्ग भी सरकार पर दबाव बना रहे थे तो सरकार ने भी इस दिशा में कार्य प्रारम्भ कर दिया और इसकी शुरूआत स्वरुप प्रशासन ने धड़ल्ले से गिरफ्तारियां करना शुरू किया। मदारी पासी को पकड़ने तथा आंदोलन पर नियंत्रण हेतु सरकार ने 2000 प्रशिक्षित पुलिस वालों को हरदोई भेजा, जिन्होने आंदोलनकारियों को भूमिगत हो जाने पर मजबूर कर दिया। यद्यपि सुशीला सरोज और सुमित सरकार का मानना है कि इसी समय मदारी पासी भी गिरफ्तार कर लिए गए,[11] किंतु उस समय के पुलिस रिकाड्स, न्यायिक दस्तावेजों अथवा अन्य किसी प्राथमिक स्रोतों से इसकी जानकारी नही मिलती है। सुभाष चन्द्र कुशवाहा और नन्द किशोर सिद्धार्थ आदि मानते हैं कि एका आंदोलन से जुड़े प्रसिद्ध समाजवादी नेता शिववर्मा के जरिए अपने अंतिम दिनों में मदारी पासी भी भगत सिंह के 'Hindustan Socialist republican Association से जुड़ गए थे।[12]

इस प्रकार जब हरदोई में मदारी पासी का आंदोलन भूमिगत हो गया तो धीरे–धीरे अन्य जिलों में भी एका आंदोलन शिथिल पड़ गया और 1922 ई0 के अंत तक यह आंदोलन क्रांतिकारी मंच से ओझल होता चला गया। इस आंदोलन की असफलता यही रही कि यह आंदोलन जहां महज कुछ ही जिलों तक सीमित रहते हुए अन्य पड़ोसी जिलों, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा समकालीन अन्य कृषक आंदोलनों से स्वयं को जोड़ नही सका। वहीं ही अपने आंतरिक दृष्टिकोण में यह आंदोलन सामाजिक जनाधार को बढ़ाते हुए स्त्रियों की सहभागिता को प्राप्त करने में भी सफलता दर्ज न करा सका।

किंतु कपिल कुमार कहते हैं कि इस आंदोलन के व्यापक क्षेत्रीय विस्तार तथा सामाजिक जनाधार को न बढ़ा पाने का कारण असमानतापूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक संरचना ही थी और इस आंदोलन का मुद्दा मात्र अंग्रेजो या जमीदारों के विरूद्ध लड़ाई नही थी अपितु जातीय उत्पीड़न, सामंती शोषण, छुआछुत आदि के प्रश्न इन कृषकों के लिए किसी आजादी की लड़ाई से कम नही थें। वे बताते हैं कि यह

आंदोलन यद्यपि जमींदारों के सामंतवादी दुष्चक्रों व अत्याचारों तथा सरकार के क्रूरतापूर्ण दमन से दबा अवश्य दिया गया किंतु कृषक समुदाय के प्रश्नों को लेकर दीर्घकालिक रूप से यह आदोंलन काफी सफल रहा।

एका आंदोलन का तत्कालीन सर्वप्रमुख प्रभाव यही रहा कि इसने अपने विस्तार क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य स्थानों के कृषकों को भी शोषित व्यवस्था के विरुद्ध आवाज मुखर करने को प्रोत्साहित किया। परिणामस्वरूप फैजाबाद के टांडा, अकबरपुर, कथेहरी, बहरामपुर, उन्नाव, गाजीपुर में भी कृषकों ने तीव्र प्रतिरोध प्रारम्भ कर दिया। गाजीपुर में किसानों ने जमींदारों की रबी की फसले काट ली। बदांयू, बरेली तथा शाहजहांपुर में भी किसानो ने संगठित होकर म्युनिसिपल आफिसों को घेर लिया, उन्हे लूटा और वहां के प्रशासन को बंदी बना लिया।

एका आंदोलन के विद्रोह से कांग्रेस ने तो स्वयं को दूर रखा किंतु सुदूर गांवों में खिलाफत कार्यकर्ताओं का सहयोग प्राप्त करने में एका आंदोलन सफल रहा। मार्च 1922 के बाद देखा जा सकता है कि जिन जिलों में खिलाफत कार्यकर्ता ज्यादा सक्रिय थे वहां एका आंदोलन ज्यादा तेज रहा। इसके साथ ही इन आंदोलनकारियों ने सूदखोरों के खिलाफ कोई कदम न उठाकर उन्हें जमींदारों एवं सरकार से मिलने से बचा लिया और शायद यही कारण था कि इन सूदखोरों ने एका आंदोलन के दमन में कोई सक्रियता नही दिखाई।

माजिद सिद्दीकी बताते हैं कि एका आंदोलन सामाजिक क्रांति का भी द्योतक था। इसने निम्न जातियों को अपने अधिकारों के प्रति स्वयं ही संघर्ष करने की जागरुकता, प्रेरणा और शक्ति प्रदान की।[13] इसने कृषकों के प्रति ब्रिटिश औपनिवेशिक चरित्र तथा जमींदारों के शोषणकारी स्वरुप को चुनौती देने का काम किया तथा इसने कांग्रेस के हस्तक्षेप को खारिज कर न केवल कांग्रेस के अवसरवादी चरित्र को उजागर किया बल्कि स्वयं के स्वावलम्बी तथा आत्मनिर्भर होने का परिचय दिया।

एका आंदोलन कृषक प्रतिरोधों का ही एक परिणाम यह भी रहा कि इससे 1920 के दशक में जन सामान्य के हितों और समाजवादी विचारधारा के पोषक संगठनों का व्यापक विकास हुआ तथा आम जनमानस में क्रांतिकारी राष्ट्रीय आंदोलन का जनाधार व्यापक दायरे में विस्तृत हुआ। कालांतर में स्वयं मदारी पासी ने भी भगत सिंह की 'Hindustan Socialist republican association' की सदस्यता ले ली थी।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि एका आंदोलन का तत्कालिक तौर पर दमन अवश्य कर दिया गया किन्तु यह कई मायनों में दीर्घकालिक तौर पर काफी सफल रहा। एका आंदोलन का स्वावलम्बी तथा आत्मनिर्भर चरित्र तथा योजनाबद्ध और सुसंगठित स्वरुप इसे अन्य कृषक आंदोलनों से भिन्न एवं राष्ट्रीय आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है। एका आंदोलन के सेनानियों ने असमानतापूर्ण वर्णव्यवस्था को सहते हुए अवध के सम्पूर्ण किसानों और मजदूरों की अस्मिता की समस्या के समाधान हेतु न केवल नेतृत्व प्रदान किया बल्कि दलित और शोषित समाज में साहस, स्वाभिमान, स्वावलम्बन और सहअस्तित्व की सुरक्षा के प्रति ललक और स्वतंत्र राजनीतिक चेतना पैदा की।

संदर्भ सूची

(1) बंद्योपाध्याय, शेखर, प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद, 2015, ओरियंट ब्लैकस्वान पब्लिकेसंस, नई दिल्ली, पृष्ठ 192–195

(2) शुक्ला,आर0एल0, आधुनिक भारत का इतिहास, 1998, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ 286

(3) सरकार, सुमित, माडर्न इण्डिया –1885–1947, पीयर्सन, 2016, पृष्ठ 146, 147

(4) दत्ता, रजनी पाम, भात वर्तमान और भावी, पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 2007, पृष्ठ 122

(5) मेहता रिपोर्ट, बिंदु 6, फाइल नं. 735/1920, उ0 प्र0 शासकीय अभिलेखागार लखनऊ

(6) कुमार, कपिल, पीजेन्ट इन रिवोल्ट, मनोहर पब्लिसिंग हाउस, दिल्ली, 1984, पृष्ठ 22

(7) कुशवाहा, सुभाष चन्द, अवध का किसान विद्रोह, राजकमल पब्लिेशन, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 247

(8) नेहरू, जवाहर लाल, एन आटोबायोग्राफी, पेंगुइन बुक्स, 2004, पृष्ठ 67,68

(9) (i)द ग्लसगो हेराल्ड, 10 मार्च 1922

(ii)द डेलीमेल, 10 मार्च 1922

(10) गेजेटियर आफ इण्डिया, उ0 प्र0, जिला हरदोई, 1988, पृष्ठ 55, कपिल कुमार, पीजेंट इन रिवोल्ट, पृष्ठ 199

(11) (i)सरोज, राम प्रकाश, क्रांतिवीर मदारी पासी एवं एका आंदोलन, प्रकाशक सुशीला सरोज, भूतपूर्व मंत्री, उ0 प्र0, 18 राजभवन कालोनी, लखनऊ, पृष्ठ 23

(ii)सरकार, सुमित, माडर्न इण्डिया–1885–1947, पीयर्सन, 2016, पृष्ठ 193

(12) (i)सिद्धार्थ, नंद किशोर, ऐतिहासिक एका आंदोलन के प्रवर्तक महानरायक मदारी पासी, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृष्ठ 29

(ii)कुशवाहा, सुभाष चंद, अवध का किसान विद्रोह, राजकमल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2018, पृष्ठ 263

(13) सिद्दीकी, एम0 एच0, अगरेरियन अनरेस्ट इन नार्थ इण्डिया, विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा0 लि0, नई दिल्ली,1978